

सङ्केतग्रह के विषय में विविध मत



प्रगति देवांशी त्रिपाठी
शोधच्छात्रा, संस्कृत विभाग,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।

शोध आलेख सार— 'सङ्केत' का अर्थ है— किसी शब्द विशेष से किसी अर्थ विशेष का बोध होना। इस सङ्केतग्रह से ही सङ्केतितार्थ की प्रतीति होती है। इस सङ्केतग्रह के आठ उपाय हैं, जिसमें लोकव्यवहार सर्वप्रमुख है। यह सङ्केतग्रह किसमें होता है? इस विषय में अनेक मतान्तर दृष्टिगोचर होते हैं। महाभाष्यकार पतंजलि जाति, गुण, क्रिया तथा यदृच्छा इन चारों में सङ्केतग्रह अङ्गीकार करते हैं। वाग्देवतावतार आचार्य मम्मट भी इन चारों में ही सङ्केतग्रह स्वीकार करते हैं। मीमांसक आचार्य केवल जाति में तथा नैयायिक जातिविशिष्ट व्यक्ति में सङ्केतग्रह स्वीकार करते हैं। बौद्ध दार्शनिक 'अपोह' में सङ्केतग्रह मानते हैं।

मुख्य शब्द— सङ्केत, अभिधा, जाति, गुण, क्रिया, यदृच्छा, जातिविशिष्ट, अपोह।

आचार्य मम्मट के अनुसार शब्द से हमें अर्थ की जो प्रतीति होती है, वह 'सङ्केतग्रह' के कारण ही होती है। सङ्केतग्रह के अभाव में शब्द से अर्थ प्रतीति सम्भव नहीं है।¹ 'सङ्केत' का अर्थ है— किसी शब्द विशेष से किसी अर्थ विशेष का बोध होना। उदाहरणार्थ :- 'गो' शब्द कहने पर सास्नादिमान् पिण्ड विशेष रूप अर्थ की प्रतीति होती है, यही 'गो' शब्द का सङ्केत है। 'गो' शब्द कहने पर सास्नादिमान् पिण्ड विशेष का ज्ञान हो जाना ही 'गो' शब्द का 'सङ्केतग्रह' कहा जाता है। 'पातंजलयोगसूत्र' के 'व्यासभाष्य' में कहा गया है कि— सङ्केत तो पद एवं पदार्थ परस्पर के अध्यास रूप स्मृति का विषय 'जो यह शब्द है वही अर्थ है और जो यह अर्थ है वही शब्द है'² व्यवधान रहित सङ्केत से जो अर्थ निकलता है, वह शब्द का 'वाच्यार्थ' कहलाता है। वह शब्द उस अर्थ का वाचक होता है।³ यही साक्षात्सङ्केतितार्थ शब्द का 'मुख्यार्थ' कहलाता है। इसे ही 'अभिधेयार्थ' भी कहते हैं। क्योंकि यह अर्थ, शब्द के अभिधाव्यापार द्वारा प्रतिपादित किया जाता है।⁴

सङ्केतग्रह मुख्यतः लोकव्यवहार से होता है। लोकव्यवहार के अतिरिक्त सात अन्य उपायों से भी सङ्केतग्रह होता है। इस प्रकार सङ्केतग्रह कुल आठ प्रकार से होता है। अलङ्कारशेखरकार आचार्य केशव मिश्र इन आठ उपायों को वर्णित करते हुए कहते हैं कि—सङ्केतग्रह कोश, व्याकरण, आप्तोक्ति, वाक्यशेष, उपमा, प्रसिद्ध पद के सम्बन्ध तथा लोक व्यवहार के द्वारा होता है।⁵ अन्यत्र भी सङ्केतग्रह के यही आठ उपाय बताये गये हैं।⁶

इन आठ उपायों द्वारा निम्नलिखित रूप से सङ्केतग्रह होता है—

‘कोशशास्त्र’ का तो लक्ष्य ही है, सङ्केतग्रह कराना। जैसे— ‘वसु तोये धने मणौ।’ यह वाक्य ‘वसु’ शब्द का सङ्केत जल, धन तथा मणिरूप अर्थों में निर्दिष्ट करता है।

‘व्याकरणशास्त्र’ धातु पाठ द्वारा धातुओं के अर्थों का निर्देश करता है जैसे—डुकृञ्करणे, भू सत्तायाम्, विद् ज्ञाने आदि इसी प्रकार ‘प्रकृति—प्रत्यय’ के माध्यम से सुबन्त, कृदन्त, कृत्यान्त, तद्धितान्त पदों में भी सङ्केतग्रह होता है।

‘आप्त’ का अर्थ है— विश्वस्त अथवा प्रमाणभूत उपदेष्टा पुरुष।⁷ ऐसा व्यक्ति जब किसी पशु आदि के बारे में बताता है कि ‘यह पशु अश्व के नाम से पुकारा जाये’ तो सुनने वाले जिन्हें शब्द का सङ्केतितार्थ ज्ञात नहीं है वे लोग अश्व शब्द का सङ्केतग्रह उस पशु विशेष में जान लेते हैं।

‘वाक्यशेष’ से सङ्केतग्रह का उदाहरण है—‘यवमयश्चरुर्भवति’। यहाँ ‘यव’ शब्द से आर्य जाति के लोग ‘जौ’ अर्थ लेते हैं, जबकि म्लेच्छ जाति के लोग ‘यव’ का अर्थ ‘मालकंगनी’ लेते हैं। यहाँ पर इस शब्द का क्या अर्थ हो, ऐसा सन्देह होने पर इस पिछले वाक्य से प्रमाणभूत वाक्य के बल पर जौ रूप अर्थ ही लिया जाता है क्योंकि वसन्त में जौ ही फलते हैं।⁸

‘उपमान’ के द्वारा सङ्केतग्रह का उदाहरण है— ‘गौरिव गवयः।’ कोई व्यक्ति जिसे ‘गवय’ का ज्ञान नहीं है, वह किसी अरण्यवासी व्यक्ति से ‘गौरिव गवयः’ सुनता है और जब कभी ‘गो’ के सदृश अन्य जीव को देखता है, तो ‘यह गवय है’ ऐसा उसे ज्ञान होता है।

वस्तुतः ‘लोक व्यवहार’ सङ्केतग्रह का सर्वप्रमुख उपाय है। व्यवहार द्वारा सङ्केतग्रह का प्रमुख उदाहरण है—किसी बालक को पदार्थों का ज्ञान होना। कोई छोटा बालक जिसे अभी पदार्थों का ज्ञान नहीं हुआ है, वह अपने पिता के पास बैठा है और पिता को किसी अन्य व्यक्ति को ‘गामानय’ ‘अश्वमानय’ इत्यादि आदेश देते हुए सुनता है तथा उस आदेशित व्यक्ति को तद्प्रकार की क्रियाओं में सलग्न देखता है और उसे धीरे—धीरे ‘गाम्’ ‘अश्वम्’ ‘आनय’ इन पदों तथा इनके पदार्थों का ज्ञान हो जाता है।

‘प्रसिद्ध पद’ के सान्निध्य से भी सङ्केतग्रह होता है। जब कहा जाता है— ‘प्रभिन्नकमलोदरे मधूनि मधुकरः पिबति।’ तब यहाँ ‘प्रभिन्नकमलोदर, मधु तथा पान—क्रिया ये तीनों ही प्रसिद्ध हैं और कमलपुष्प के मधुपान का अन्वयी होने के कारण मधुकर शब्द स्वयं अपना ‘भ्रमर’ रूप अर्थ बता देता है। यदि कोई व्यक्ति ‘मधुकर’ शब्द का सङ्केतितार्थ नहीं भी जानता, तो अन्य प्रसिद्ध पदों के उल्लेख मात्र से उनसे जुड़े ‘मधुकर’ शब्द का सङ्केतितार्थ जान लेता है।

कभी—कभी ‘विवृत्ति’ के द्वारा भी सङ्केतग्रह होता है। विवृत्ति का अर्थ है— अर्थ का विवरण। किसी पद विशेष के अर्थ के विवरण को सुनकर, उस पद के अर्थ को न जानने वाले व्यक्ति को उस पद के अर्थ का ज्ञान हो जाता है।

यह 'सङ्केतग्रह होता कहाँ है? अर्थात् 'कहाँ पर सङ्केतग्रह माना जाय? इस विषय पर चार प्रमुख मत मिलते हैं। कुछ आचार्य जाति, गुण, क्रिया तथा यदृच्छा इन चारों में सङ्केतग्रह मानते हैं, कुछ आचार्य मात्र जाति में ही मानते हैं, जबकि कुछ आचार्य जातिविशिष्ट व्यक्ति में तथा कुछ आचार्य अपोह में सङ्केतग्रह मानते हैं।

प्रथम मत— महाभाष्यकार पतंजलि जाति, गुण, क्रिया तथा यदृच्छा इन चारों में सङ्केतग्रह स्वीकार करते हैं।⁹

कविराज आचार्य विश्वनाथ भी इन चारों में ही सङ्केतग्रह मानते हैं।¹⁰ यदृच्छा को साहित्यदर्पणकार ने 'द्रव्य' के रूप में अभिहित किया है। आचार्य मम्मट को भी इन चारों में ही सङ्केतग्रह अभिमत है।¹¹ काव्यप्रकाशकार के अनुसार—यद्यपि अर्थक्रिया का निर्वाहक होने से प्रवृत्ति—निवृत्ति योग्य व्यक्ति ही होता है परन्तु, सङ्केतग्रह व्यक्ति में न मानकर व्यक्ति की जाति, गुण, क्रिया, यदृच्छा रूप उपाधियों में ही मानना चाहिए क्योंकि व्यक्ति में सङ्केतग्रह मानने पर 'आनन्त्य' तथा 'व्यभिचार दोष' उपस्थित हो जायेगें। यदि व्यक्ति में सङ्केतग्रह माना जाय तो जिस व्यक्ति विशेष में सङ्केतग्रह हुआ है, उस शब्द से उस व्यक्ति विशेष की ही प्रतीति होगी, अन्य व्यक्तियों की प्रतीति के लिए प्रत्येक व्यक्ति में अलग—अलग सङ्केतग्रह मानना आवश्यक होगा तथा अनन्त व्यक्तियों में सङ्केतग्रह के लिये अनन्त शक्तियों की कल्पना करनी पड़ेगी, जिसे 'आनन्त्य दोष' कहा जाता है। इस प्रकार से अनन्त शक्तियों की कल्पना तो असम्भव ही है। इसके अतिरिक्त इस प्रकार से मात्र वर्तमानकालिक तथा वर्तमान देश के व्यक्तियों से ही सङ्केतग्रह सम्भव है। भूत, भविष्य तथा देशान्तर के व्यक्तियों में सङ्केतग्रह सम्भव ही नहीं हो सकेगा। इस आनन्त्यदोष से बचने के लिए यदि कहा जाय कि अन्य सब व्यक्तियों में अलग—अलग सङ्केतग्रह की आवश्यकता नहीं होती कुछ व्यक्तियों में व्यवहार से सङ्केतग्रह हो जाता है, शेष व्यक्तियों का बोध बिना सङ्केतग्रह के ही होता रहता है, तब यहाँ पर 'व्यभिचार दोष' उपस्थित हो जायेगा। क्योंकि शब्द सङ्केत की सहायता से ही अर्थ की प्रतीति कराता है। कुछ व्यक्तियों में ही सङ्केतग्रह मानकर उसी से अन्य व्यक्तियों की प्रतीति मानने पर इस नियम का उल्लंघन होगा। यही 'व्यभिचार दोष' कहा जाता है। इसके अतिरिक्त यदि व्यक्ति में सङ्केतग्रह माना जाएगा, तब गुण, क्रिया, जाति व यदृच्छा विभेद भी नहीं प्राप्त हो सकेगा। अतः इन चारों उपाधियों (जाति, गुण, क्रिया, यदृच्छा) में ही सङ्केतग्रह मानना तर्कसङ्गत है।¹²

काव्यप्रकाशकार के अनुसार—उपाधि के दो भेद हैं— वस्तुधर्म रूप तथा वक्तृयदृच्छारूप। 'सिद्ध' तथा 'साध्य' दो भेद 'वस्तुधर्म' रूप उपाधि के होते हैं। सिद्ध वस्तुधर्म भी 'प्राणप्रद धर्म' तथा 'विशेषाधानहेतु' भेद से दो प्रकार का हो जाता है। वस्तु का प्राणप्रद धर्म ही 'जाति' कहा जाता है। 'गौ' आदि व्यक्तियों में जो गोत्व आदि प्राणप्रद धर्म है अर्थात् जिसके कारण गौ को 'गौ' कहा जाता है, वही जाति है।¹³ विशेषाधान हेतु सिद्ध वस्तुधर्म 'गुण' कहा जाता है।¹⁴ इसी के कारण एक व्यक्ति अपने सजातीय दूसरे व्यक्तियों से भिन्न प्रतीत होता है। यथा 'शुक्ला गो', 'कृष्णा गो' से भिन्न प्रतीत होती है। 'काव्यप्रकाशकार' के अनुसार— शुक्लत्वादि गुणों के कारण ही सत्तावान् वस्तु विशिष्टता या भिन्नता को प्राप्त करती है।¹⁵ 'क्रिया' वस्तु की 'साध्य रूप धर्म' होती है। उदाहरणार्थ :- पाक आदि क्रियाएं। अधिश्रयण (पाक के लिए पात्र को चूल्हे पर चढाना) से लेकर अवश्रयण (भोजन पक जाने पर पात्र को चूल्हे से नीचे

उतारना) तक के पहले व बाद में किए जाने वाले सारे व्यापारकलाप 'पाकक्रिया' नाम से ही अभिहित किये जाते हैं।¹⁶ द्रव्य अथवा यदृच्छा एक व्यक्तिवाची होते हैं जैसे डित्थ, डवित्थ, हरि, हर आदि।¹⁷

द्वितीय मत— यह मत मीमांसक आचार्यों का है जो जाति, गुण, क्रिया, यदृच्छा इन चारों में से जाति मात्र में ही सङ्केतग्रह मानते हैं।

काव्यप्रकाशकार ने 'सङ्केतितश्चतुर्भेदो जात्यादिर्जातिरेव वा' सूत्र में 'जातिरेव वा' कहकर मीमांसकों के इसी मत की ओर सङ्केत किया है। यहाँ पर जाति से जाति सामान्य, गुण सामान्य, क्रिया सामान्य तथा यदृच्छा सामान्य इन चारों सामान्यों का बोध होता है। जाति का ही दूसरा नाम है— सामान्य। सामान्य का लक्षण दो प्रकार से किया गया है। प्रथम, 'अनुवृत्ति प्रत्यय हेतुः सामान्यम्' अर्थात् अनुवृत्ति अथवा एकाकार प्रतीति का हेतु 'सामान्य' कहलाता है। उदाहरणार्थ :— अनेक घट व्यक्तियों में 'घटः घटः' इस प्रकार की जो एकाकार प्रतीति होती है वह घटत्व सामान्य के कारण होती है। इसी को 'जाति' कहा जाता है। सामान्य का द्वितीय लक्षण है— 'नित्यत्वे सत्यनेकसमवेतत्वं सामान्यम्' अर्थात् नित्य तथा अनेक में समवेत रहने वाला धर्म 'सामान्य' कहा जाता है। 'घट' में रहने वाला 'घटत्व' नित्य तथा अनेक 'घट' व्यक्तियों में समवेत रहने के कारण 'घट सामान्य' कहलाता है। इसी 'घटत्व' में मीमांसक आचार्य सङ्केतग्रह मानते हैं।

'गुण सामान्य' में सङ्केतग्रह के विषय में मीमांसक आचार्यों का मत है कि हिम, पय, शङ्ख आदि में 'शुक्ल गुण' रहता है, परन्तु सभी की शुक्लता एक दूसरे से भिन्न होती है अतः उनमें एकरूपता का अभाव होता है। गुणमात्र में सङ्केतग्रह मानने पर सभी शुक्लताओं में अलग-अलग सङ्केतग्रह मानना होगा जो कि अनुचित है। परन्तु इन सभी शुक्लताओं के साथ 'शुक्लः शुक्लः' इत्यादि प्रकार का जो व्यवहार होता है वह उनमें रहने वाले शुक्लत्व सामान्य के कारण है। इसी शुक्लत्व सामान्य में सङ्केतग्रह मान लेने पर भिन्न-भिन्न शुक्ल गुणों के साथ अलग-अलग सङ्केतग्रह नहीं मानना पड़ेगा।¹⁸

इसी प्रकार गुड, तण्डुल आदि की पाक क्रिया भिन्न-भिन्न है। भिन्न होने पर भी दोनों के साथ ही 'पाकक्रिया' शब्द का प्रयोग किया जाता है, जो पाक क्रिया सामान्य के कारण ही सम्भव हो पाता है। मीमांसक आचार्य इसी 'पाकत्व सामान्य' में सङ्केतग्रह मानते हैं।¹⁹

'यदृच्छा सामान्य' में सङ्केतग्रह के विषय में मीमांसकों का कथन है कि उच्चारण करने वाले व्यक्तियों के भेद से उच्चरित शब्दों में भी वृद्धि तथा ह्रासरूप परिवर्तन होता रहता है, इस आधार पर यदृच्छा शब्दों में भी भेद की कल्पना की जा सकती है। इसी डित्थत्व जाति में मीमांसक आचार्य सङ्केतग्रह मानते हैं।²⁰

तीसरा मत— सङ्केतग्रह के विषय में तीसरा मत नैयायिक आचार्यों का है। नैयायिकों के मत में न केवल जाति में सङ्केतग्रह माना जा सकता है और न केवल व्यक्ति में। केवल व्यक्ति में सङ्केतग्रह मानने से आनन्त्य और व्यभिचार दोष आते हैं तथा केवल जाति में

सङ्केतग्रह मानने पर शब्द से केवल जाति की उपस्थिति के कारण व्यक्ति का बोध नहीं हो पाता है। जाति में सङ्केतग्रह मानकर व्यक्ति का बोध आक्षेप से मानने पर भी उचित नहीं होगा क्योंकि 'शाब्दी हि आकाड ्षा

शब्देनैव पूर्यते' इस सिद्धान्त के अनुसार शब्दशक्ति से प्राप्त अर्थ ही शाब्दबोध में अन्वित होता है, 'आक्षेप' लभ्य अर्थ नहीं। अतः केवल जाति या केवल व्यक्ति में सङ्केतग्रह नहीं माना जा सकता। नैयायिक आचार्यों ने इसके लिए 'जातिमान् (तद्वान्)' अर्थात् जातिविशिष्ट व्यक्ति की कल्पना की है। इनके अनुसार 'जाति (आकृति) से विशिष्ट व्यक्ति' ही पद का अर्थ होता है।²¹ इसी 'जाति विशिष्ट व्यक्ति' में सङ्केतग्रह मानने पर जाति तथा व्यक्ति दोनों का बोध हो जायेगा, ऐसा नैयायिकों का मत है।

चौथा मत— यह मत बौद्ध आचार्यों का है। बौद्ध आचार्य जाति, गुण, क्रिया, यदृच्छा इन सबसे भिन्न 'अपोह' में सङ्केतग्रह मानते हैं। बौद्धमतानुसार— शब्द का अर्थ 'अपोह' होता है। यह अपोह ही अनुगत प्रतीति का कारण होता है। 'अपोह' का अर्थ है— अतद्-व्यावृत्ति अथवा तद्भिन्नभिन्नत्व। उदाहरणार्थ—दस घट व्यक्तियों में जो 'घटः-घटः' इस प्रकार की अनुगत प्रतीति होती है, उसका कारण 'अघट-व्यावृत्ति' या 'घटभिन्नभिन्नत्व' है। प्रत्येक घट अघट अर्थात् घटभिन्न समस्त वस्तुओं से भिन्न है। इसलिए उसमें 'घटः-घटः' यह एक ही प्रतीति होती है, यह प्रतीति ही घट शब्द का अर्थ है और यही 'अपोह' कहा जाता है। इसी अपोह में सङ्केतग्रह होता है, ऐसा बौद्ध आचार्यों का मत है।

संक्षेपतः यह कहा जा सकता है कि अभिधा भक्ति के द्वारा जो अर्थ बोधित होता है। उसे ही वाच्यार्थ अभिधेयार्थ या संकेतितार्थ भी कहा जाता है। इस सङ्केतग्रह से ही सङ्केतितार्थ की प्रतीति होती है। इस सङ्केतग्रह के आठ उपाय हैं, जिसमें लोकव्यवहार सर्वप्रमुख है। यह सङ्केतग्रह किसमें होता है? इस विषय में अनेक मतान्तर दृष्टिगोचर होते हैं। महाभाष्यकार पतंजलि जाति, गुण, क्रिया तथा यदृच्छा इन चारों में सङ्केतग्रह अङ्गीकार करते हैं। वाग्देवतावतार आचार्य मम्मट भी इन चारों में ही सङ्केतग्रह स्वीकार करते हैं। मीमांसक आचार्य केवल जाति में तथा नैयायिक जातिविशिष्ट व्यक्ति में सङ्केतग्रह स्वीकार करते हैं। बौद्ध दार्शनिक 'अपोह' में सङ्केतग्रह मानते हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. 'इहागृहीतसङ्केतस्य शब्दस्यार्थप्रतीतेरभावात् सङ्केतसहाय एवं शब्दोऽर्थविशेषं प्रतिपादयति' (काव्यप्रकाश, द्वितीय उल्लास)
2. 'सङ्केतस्तु पदपदार्थयोरितरेतराध्यासरूपः स्मृत्यात्मको योऽयं शब्दः सोऽर्थो योऽर्थः स शब्द' (पातंजलयोगसूत्र व्यासभाष्य)
3. साक्षात्सङ्केतितं योऽर्थमभिधत्ते स वाचकः। (काव्यप्रकाश, द्वितीय उल्लास)
4. स मुख्योऽर्थस्तत्र मुख्यो व्यापारोऽस्याभिधोच्यते। (काव्यप्रकाश, द्वितीय उल्लास)
5. कोशव्याकरणाप्तोक्तिवाक्यशेषोपमादितः
प्रसिद्धपदसम्बन्धाद् व्यवहाराच्च बुध्यते।। (अलङ्कारशेखर, प्रथमरत्न, तृतीयमरीचि)
6. शक्तिग्रहं व्याकरणोपमानकोशाप्तवाक्याद् व्यवहारतश्च।
वाक्यस्य शेषाद् विवृतेर्वदन्ति सान्निध्यतः सिद्धपदस्य वृद्धाः।।
7. आप्तस्तु यथार्थवक्ता। (तर्कसङ्ग्रह)

8. वसन्ते सर्वशस्यानां जायते पत्रशातनम् ।
मोदमानाश्च तिष्ठन्ति यवाः कणिशशालिनः ।।
9. चतुष्टयी शब्दानां प्रवृत्तिः जातिशब्दाः गुणशब्दाः क्रियाशब्दाः यदृच्छाशब्दाश्चतुर्थाः ।
(महाभाष्य)
10. सङ्केतो गृह्यते जातौ गुणद्रव्यक्रियासु च । (साहित्यदर्पण, द्वितीय परिच्छेद)
11. सङ्केतितश्चतुर्भेदो जात्यादिर्जातिरेव वा । (काव्यप्रकाश, द्वितीय उल्लास)
12. 'यद्यप्यर्थक्रियाकारितया प्रवृत्तिनिवृत्तियोग्या व्यक्तिरेव तथाप्यानन्त्याद् व्यभिचाराच्च तत्र सङ्केतः कर्तुं न युज्यत इति, 'गौः शुक्लः चलो डित्थः' इत्यादीनां विषय विभागो न प्राप्नोतीति च, तदुपाधावेव सङ्केतः।' (काव्यप्रकाश, द्वितीय उल्लास)
13. जातिर्गोपिण्डादिषु गोत्वादिका । (साहित्यदर्पण, द्वितीय परिच्छेद)
14. गुणो विशेषाधानहेतुः सिद्धोवस्तुधर्मः । (साहित्यदर्पण, द्वितीय परिच्छेद)
15. शुक्लादिना हि लब्धसत्ताकं वस्तु विशिष्यते । (साहित्यदर्पण, द्वितीय परिच्छेद)
16. एषु हि अधिश्रयणावश्रयणान्तादिपूर्वापरीभूतो व्यापारकलापः पाकादिशब्दवाच्यः ।
(साहित्यदर्पण, द्वितीय परिच्छेद)
17. द्रव्य शब्दा एक व्यक्तिवाचिनो हरिहरडित्थडवित्थादयः ।
(साहित्यदर्पण, द्वितीय परिच्छेद)
18. हिम-पयः शङ्खाद्यश्रयेषु परमार्थतो भिन्नेषु शुक्लादिषु यद्वशेन
शुक्लः शुक्ल इत्यभिन्नाभिधान प्रत्ययोत्पत्तिस्तु शुक्लत्वादि सामान्यम् ।
(काव्यप्रकाश, द्वितीय उल्लास)
19. गुडतण्डुलादिपाकादिष्वेवमेव पाकत्वादि । (काव्यप्रकाश, द्वितीय उल्लास)
20. बालवृद्धशुकाद्युदीरितेषु डित्थादिशब्देषु च, प्रतिक्षणं भिद्यमानेषु
डित्थाद्यर्थेषु वा डित्थत्वाद्यस्तीति सर्वेषां शब्दानां जातिरेव प्रवृत्तिनिमित्तमित्यन्ये ।
(काव्यप्रकाश, द्वितीय उल्लास)
21. व्यक्त्याकृतिजातयस्तु पदार्थः । – न्यायसूत्र 2/2/68